ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

विचार
चिंतन
शोध सृजन

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष-6 अंक-22 अप्रैल - जून, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

Scanned with CamScanner

ISSN : 2455-4219
(UGC-Care Listed)

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 6 | अंक - 22 | अप्रैल-जून, 2021

Year - 06 | Volome - 22 | April-June, 2021

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
श्री सुधीर कुमार तिवारी

© प्रकाशक :
संपादकीय / प्रकाशकीय पता :–
आलोचन दृष्टि प्रकाशन,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com
दूरभाष : 9451949951 / 7376267327

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

Scanned with CamScanner

विषयानुक्रमणिका

1.	आधुनिक-भावबोध का नाटकीय-सन्दर्भ और 'ययाति' *डॉ. सुनील कुमार मानस*	1-3
2.	जनजातीय-जीवन में अस्तित्व का संघर्ष और उसकी औपन्यासिक-अभिव्यक्ति *डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय*	4-8
3.	साहित्य में किसान की लोक-भावभूमि (धरती तोरे अंचरा मा बीज ला बिखेरन) *डॉ. मीता शर्मा*	9-13
4.	साठोत्तरी हिंदी कविता में अलगाव एवं संत्रास *डॉ. मंजुनाथ एन. अंबिग*	14-18
5.	हिंदी लघुकथा में मानव जीवन के विविध संदर्भ डॉ. नवनाथ गाड़ेकर	19-21
6.	विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा... *सुधीर कुमार तिवारी*	22-25
7.	महादेवी के काव्य की प्रणय चेतना(संयोग पक्ष के संदर्भ में) *चिन्मयी मिश्र*	26-30
8.	भारत में इच्छामृत्यु का विश्लेषणात्मक अध्ययन *वैभव भण्डारी*	31-35
9.	योग-दर्शन में ईश्वर की अवधारणा एवं समाधि-लाभ *पूनम गुप्ता एवं डॉ. बी. आर. शर्मा*	36-39
10.	कोविड-19 महामारी के दौरान भारत में प्रवासी संकट : एक विश्लेषण *डॉ. ऋतेष भारद्वाज एवं डॉ. पिंकी पुनिया*	40-43
11.	इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता का स्वर *डॉ. शत्रुघ्न कुमार मिश्र*	44-46
12.	वीरेन्द्र मिश्र के गीतों में संवेदनात्मक-अवधारणा *मोहन बैरागी*	47-51
13.	लोकजीवन की भावसंगति दुनिया को उकेरता 'छकरबाज नाच'(लौंडा नाच) *डॉ. सुनील कुमार शॉ*	52-54
14.	'हलाला' नारी-स्वतंत्रता के लिए एक चुनौती *जानी तुषार चंदुलाल*	55-58
15.	महिला शिक्षा : पर्यावरणीय संचेतना *मानसी पाण्डेय*	59-62
16.	तुलसी का समाज-दर्शन *डॉ. अर्चना पाण्डेय*	63-65

Scanned with CamScanner

17. मृदुला गर्ग के आठवें दशक की कहानियों में भारतीय-नारी — 66-69
मनोज कुमार सिंह

18. रीतियुगीन मुस्लिम कवियों की शृंगार-भावना — 70-73
डॉ. अनुपम गुप्ता

19. हिन्दी उपन्यासों में थर्ड-जेंडर की सामाजिक चुनौतियाँ — 74-77
अंकिता देवी

20. दलित साहित्य : आशय, अवधारणा और मुक्ति — 78-81
किरण असवाल

21. रमेशचन्द्र शाह के उपन्यासों में धार्मिक एवं ऐतिहासिक वर्णन की प्रासंगिकता — 82-85
कृपा शंकर

22. प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-जीवन — 86-89
शिप्रा श्रीवास्तव

23. योग-दर्शन में मन की अवधारणा — 90-94
हिमांशु परिदा एवं डॉ. अंजला देवी

24. प्रेमचंद की दलित-जीवन से जुड़ी कहानियों का सांदर्भिक-विवेचन — 95-98
डॉ. रमेश यादव

25. हानूश : एक कलाकार की मर्मांतक पीड़ा — 99-100
मिथिलेश कुमार मिश्र

26. अशोक का धम्म — 101-103
डॉ. अमित दूबे

27. गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में वर्णित मंदिर-स्थापत्य — 104-106
प्रवीण पाण्डेय

28. निजी क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण तथा शहरी महिला कर्मचारियों के कार्य-संतोष... — 107-109
डॉ. अनामिका लिंका

29. **Analysing the Deteriorating Conditions of Prisons And Prisoners...** — 110-113
Chaitanya Pant

30. **Transgressing the Boundaries: Resistance in *The Autobiography of a*...** — 114-117
Dr. Anju K.N.

31. **Quest For Freedom In Mark Twain's Select Novels - A Pragmatic Study** — 118-121
Chappali Vijaya Kumar & Dr. V. Ravi Naidu

32. **Psychological Distress : Origin and Expression** — 122-125
Salvi Singh & Dr. Seema Singh

33. **Topic of Research Paper: The Plight of the Marginalised and....'Tara'** — 126-128
Subhadeep Talukder

34. **Adverse Effects of Covid-19 : A Psychological Pandemic on the Way** — 129-132
Dr. Anil Kumar Teotia

Scanned with CamScanner

35. **Githa Hariharan's Female Protagonists in The Thousand Faces of Night...** 133-137
Dr. Naveen K. Mehta & Soumya Tiwari

36. **Role of ICT in Secondary Teacher Training Program with....** 138-142
Dr. Anita Joshi & Dr. Maya Joshi

37. **Challenges and impact of online Education during Covid19** 143-146
Dr. G. Sowbhagya

38. **Caste in a Foreign Land : Changing Aspects of an Indian Cultural...** 147-150
Kiran Jha

39. **Environment and Development : A Theoretical Study** 151-154
Kumar Prashant

40. **Mother as Oppressed Oppressor : Conceptualizing Internalized...** 155-158
Mariyam Parveen

41. **Reflection of Artistic Thoughts and Moral Vision in Iris Murdoch's...** 159-162
Dr. Naveen K. Mehta & Muskan Solanki

42. **An Analysis of Fake news on social media and its impact during covid...** 163-165
Ravi Shankar Maurya & Dr. Tasha Singh Parihar

43. **Criminology in Literature : Exploring the Subtle Crimes in Shakespeare...** 166-169
S. Jenosha Prislin & Dr. J. Santhosh Priyaa,

44. **Attitudes of U.G. Studeants Towards Social Media in Education** 170-173
Dr. Samir Kumar Lenka

45. **Spiritual Intelligence in the realm of Education : A Study on General...** 174-177
Mr. Sandip Sutradhar & Prof. Nil Ratan Roy

46. **Social Media Use and Its Impact on School Going Children** 178-181
Dr. Sapna Kashyap & Aarti

47. **Role of yoga for the mental and emotional well being** 182-185
Kaushal Kumar

48. **Reviewing the status of Psychological behavior and food security in...** 186-189
ILMA Rizvi, Ateeqa Ansari & Prof. Shahid Ashraf

49. **Cultural Archetypes in select novels of Achebe, Mohanty and Ngugi...** 190-192
Dr. B. S. Selina

50. **G. K. Mhatre : Revolutionary sculptor of Pre-Independence India** 193-195
Binoy Paul

51. **Are we actually riding on the learning wave in an ocean of Webinars...** 196-199
Dr. Ashish Mathur & Dr. Sona Vikas

52. **Role of the Mauzadars in the British-Nyishi Relations** 200-204
Dr. Tade Sangdo

Scanned with CamScanner

53. **Contextualizing Jyotiprasad Agarwala's Political Ideology of Beauty...** 205-209
Dr. Umakanta Hazarika

54. **Study of Attitude of Arts And Science D.El.Ed Trainees Towards...** 210-214
Swati Pant Lohni & Dr. Maya Joshi

55. **Resistance through Persistence : A critical study of *The Vegetarian*** 215-218
Dr. Anju E. A.

56. **Accessibility of Assistive Technology for Inclusion of Differently Abled...** 219-222
Amit Shanker & Ravi Kant

57. **Justice delayed is justice denied : Prison and Multitudinal Traumatic...** 223-225
Smitha Mary Sebastian

58. **Gandhi's Concept of Religion** 226-228
Tinku Khatri

59. **Spatial Inequalities in the Distribution of Critical Household...** 229-233
Rambooshan Tiwari & Prashant Tiwari

60. **The New Future Of Event Management in Post COVID Era** 234-236
Anup M. Gajjar & Dr. Bhaveshkumar J. Parmar

61. **Students' Perception About Celebrity Endorsement : A Study of....** 237-241
Amit Kumar Pahwa & Dr. Ekta Mahajan

Scanned with CamScanner

जनजातीय-जीवन में अस्तित्व का संघर्ष और उसकी औपन्यासिक-अभिव्यक्ति

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय *

शोध–सारांश :– बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में आदिवासियों के समक्ष अपनी कला, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज और परंपराओं को बचाने का बहुत बड़ा संकट खड़ा हो गया है। जनजातियों के समक्ष आज दोहरी समस्या है। एक तरफ वे अत्यंत अविकसित अवस्था में हैं और जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयासरत हैं, वहीं दूसरी तरफ उन्हें अपनी मौलिक पहचान को बनाये रखने के लिए भी लड़ाई लड़नी पड़ रही है। गरीबी और लगातार हो रहे शोषण के चलते आदिवासी समाज शेष समाज की मुख्य–धारा से नहीं जुड़ पाया है। आदिवासी और तथाकथित सभ्य समाज के बीच इस वैषम्य ने उनके अंदर विद्रोह और अलगाववाद की भावना को जन्म दिया है। छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओड़िशा, झारखण्ड, तेलंगाना इत्यादि राज्यों के अनेक जिलों में 'नक्सली समस्या' को भी हताशा और उपेक्षा से उपजी कार्यवाही बताया जा सकता है। नक्सली गतिविधियाँ जहाँ देश के लिए चुनौती हैं वहीं इनसे आम आदिवासी भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है। आज हमें आदिवासी संस्कृति की रक्षा, भूख से मुक्ति और विस्थापन के बाद उनके पुनर्वास पर विषेष ध्यान देना होगा साथ ही उनके लिए रोजगार के नये अवसर सृजित करने होंगे। भेदभाव रहित और समतामूलक समाज के लिए हमें आदिवासी विकास की रणनीति में व्यापक परिवर्तन करना होगा।

कूट शब्द :- शोषण, अलगाव, उपेक्षा, विद्रोह, पीड़ा, विवशता, संघर्ष, बाजारवाद, भूमण्डलीकरण, अस्तित्व, समाज।

शताब्दियों से आदिवासी समाज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। औपनिवेशिक युग में शोषकों की एक पूरी फौज ने उनका सामाजिक–आर्थिक शोषण किया और तत्कालीन सरकार ने उनके अलगाव की नीति जारी रखी। देश की स्वतंत्रता के बाद हालांकि तमाम सरकारों ने उन्हें मुख्यधारा में लाने के प्रयास किये हैं लेकिन इसके बावजूद अभी भी वे शोषण, घुटन और अलगाव से पीड़ित हैं और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में आदिवासियों के समक्ष अपनी कला, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज और परंपराओं को बचाने का बहुत बड़ा संकट खड़ा हो गया है। जनजातियों के समक्ष आज दोहरी समस्या है। एक तरफ वे अत्यंत अविकसित अवस्था में हैं और जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयासरत हैं वहीं दूसरी तरफ उन्हें अपनी मौलिक पहचान को बनाये रखने के लिए भी लड़ाई लड़नी पड़ रही है।

वर्तमान समय में आर्थिक संपन्नता सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारक कारक बन गयी है। ऐसे में अपनी गरीबी और लगातार हो रहे शोषण के चलते आदिवासी समाज शेष समाज की मुख्य–धारा से नहीं जुड़ पाया है। आदिवासी और तथाकथित सभ्य समाज के बीच इस वैषम्य ने उनके अंदर विद्रोह और अलगाववाद की धारणा को जन्म दिया है। छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओड़िशा, झारखण्ड, तेलंगाना इत्यादि राज्यों के अनेक जिलों में 'नक्सली समस्या' को भी हताशा और उपेक्षा से उपजी कार्यवाही बताया जा सकता है। नक्सली गतिविधियाँ जहाँ देश के लिए चुनौती हैं वहीं इनसे आम आदिवासी भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है। "एक गैर सरकारी संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक, देश के विभिन्न हिस्सों में जारी नक्सली गतिविधियों के कारण चार लाख से ज्यादा आदिवासी बेघर हो चुके हैं। एशियन इंडेजिनस एंड ट्राइबल्स पीपल्स नेटवर्क के मुताबिक ये विस्थापित लोग भोजन, पानी, छत, इलाज और आजीविका के साधनों के अभाव में मुश्किल से गुजर–बसर कर रहे हैं।"[1] इसके अतिरिक्त कई क्षेत्रों में हो रहे असमान विकास ने भी

*सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर, जिला– बलरामपुर–रामानुजगंज (छ0ग0)– पिन–497119।

Scanned with CamScanner

आदिवासियों के बीच विद्रोह की भावना को मुखर किया है। जनजातियों की कला और संस्कृति को संरक्षित करने की कोई ठोस नीति सरकार ने नहीं बनाई है। संरक्षण के अभाव में जनजातियों की बहुत सी ललित कलायें आज दम तोड़ रही हैं। देश की तमाम छोटी–छोटी जनजातियाँ भी आज लुप्त होने के कगार पर हैं। आदिवासियों के समक्ष आये इस संकट को हिन्दी के लेखकों ने गहरी संवेदना के साथ व्यक्त किया है, कई उपन्यासों में इस संकट के मूल कारणों की पड़ताल की गई है और उन परिस्थितियों को भी दर्शाया गया है जिसके चलते आज आदिवासियों का वजूद खतरे में है। 'शैलूष' उपन्यास में लेखक आदिवासियों के जीवन पर आये इस संकट को औद्योगीकरण से जोड़कर देखता है। उपन्यास में सब्बो, जुड़ावन नट से कहती है–"तुम लोगों की सबसे बड़ी कमजोरी है कि तुम लोग आगे के बारे में कुछ सोचते ही नहीं। अब वह सब जिसे तुम धरती मइया कहते थे, जहाँ तुम्हारा कबीला डेरा डालता था, जहाँ तुम्हारी छोकरियां नहाती–धोती थीं, जहाँ तुम्हारे गदेले गुल्ली–डंडा खेलते थे, जहाँ तुम्हारी भैंसें चरती–चोंथती थीं, जहाँ तुम्हारे मुर्गी–मुर्गियाँ दाना चुगती थीं, वह सब छिन जायेगा। तुम सोचते हो कि सोन पहड़ा पीली चट्टानों का ढेर है, पन्ना की पहाड़ियाँ हरे रंग की साड़ी में लिपटी सोनवां या उसी तरह की खूबसूरत परियाँ हैं जिसे तुम खून की होली खेलकर उठा लाओगे, जैसे तुम्हारे पूर्वज आल्हा–ऊदल ने किया था। तुम लोग देख नहीं पा रहे हो, मूरखचंदो, कि यह सारा इलाका किस तरह बदल रहा है कि सीमेंट, चूना, कोयला, जस्ता, अलुमुनियम के लिए ऐसी खुदाई होगी कि तुम्हारे जैसे आदिवासियों को पैर रखने की जगह नहीं मिलेगी।"[2]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' में संजीव आदिवासियों के अस्तित्व पर आये इस संकट को पूरे परिवेश के साथ चित्रित करते हैं। उपन्यास के केन्द्र में बिहार के पश्चिमी चंपारण की थारू जनजाति की कथा है। लेखक डाकुओं की समस्या को एक सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित करता है। कहीं न कहीं इस समस्या के लिए हम खुद जिम्मेदार हैं। दरअसल हम दूर बैठकर यह मान लेते हैं कि डकैतों का सफाया होना चाहिए लेकिन हम डकैत बनने की परिस्थितियों को नहीं देखते। हर आदमी अपने जीवन में सम्मान चाहता है और जब चाहकर भी उसे शोषण से मुक्ति नहीं मिलती तो वो बंदूक उठा लेता है। यह उपन्यास राजनीति, समाज और धर्म में आई गिरावट को भी रेखांकित करता है। आज भी थारू जनजाति अभाव, पिछड़ापन, शोषण, यंत्रणा, उत्पीड़न, विस्थापन, भूख जैसी समस्याओं से त्रस्त है। उन्हें एक ओर तो सेठ–साहूकार शोषित करते हैं वहीं दूसरी ओर पुलिस भी अत्याचार करती है। ऐसा लगता है कि सारा कानून गरीबों के लिए है। उपन्यास में मलारी अपने भतीजे काली से अपने जीवन की व्यथा व्यक्त करती है–"काहे को गरीब घर में जनम दिये हे भगवान? ई कैसी जिनगानी है वीरन, तुम राम की नाईं जंगल–जंगल भटक रहे हो। तुम्हारा भाई नहीं, बाप था बिसराम, दशरथ की तरह क्लेश से तड़प–तड़प के मरा, माटी की गति करने वाला भी कोई नहीं, जैसे वह किसी माँ की कोख से नहीं खोंढर में पैदा हुआ था। तुम्हारी सीता जैसी दुलहिन को कौन 'रवनवा' हर ले गया। उसको कोढ़ भी नहीं फूटता। अभी भी ई कठकरेज हम–तुम जिंदा ही हैं, हे भगवान।"[3] 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में लेखक मुख्यतः विकास और औद्योगीकरण को आदिवासियों के जीवन में आये संकट का कारण मानता है। हालांकि समस्या तब शुरू होती है जब विकास में हिस्सेदारी के बावजूद आदिवासियों को उपेक्षित कर दिया जाता है, शताब्दियों से जिन संसाधनों पर उनका अधिकार चला आ रहा है विकास के नाम पर वे उससे बेदखल किये जा रहे हैं। लेखक इस पर चिंता प्रकट करता है–"आधुनिक विकास के नारों की उल्टियाँ करती चिमनियाँ आदिवासियों के जंगल, जमीन और पारंपरिक रोजगार तक छीनती गयी हैं। संजीव को लगता है, स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय विकास की जितनी बड़ी कीमत आदिवासी समाज ने चुकायी है उतनी शायद किसी समाज ने अकेले दम नहीं चुकायी।"[4]

धर्म की आड़ में आदिवासियों के शोषण की समस्या को 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में मनमोहन पाठक उठाते हैं। अपने परंपरागत धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अपनाने से जहाँ आदिवासियों में सांस्कृतिक समस्याएं बढ़ी हैं वहीं धर्म के वर्चस्व की राजनीति ने उनके अंदर धार्मिक हीनता, पराजय बोध और अलगाव की भावना पैदा की है। नये और पुराने के द्वंद्व में फंसकर आदिवासी अपने आपको वैचारिक स्तर पर भी ठगा हुआ महसूस करता है। अनावश्यक धार्मिक हस्तक्षेप उनके दैनिक क्रियाकलापों को प्रभावित

Scanned with CamScanner

करता है। उपन्यास में धार्मिक शोषण से आहत सोनाराम, टूना उराँव से कहता है–"लेकिन उनका धर्म तो हमें सजा दे रहा है, दादा! उनका धर्म, उनका समाज तो हमारे समाजों को, गाँवों को लीलता जा रहा है। दादा! हमारा धर्म, हमारे देवता क्या इतने कमजोर हैं कि वे अपने लोगों को बचा नहीं सकते? उनके फैलाए गए ग्रपंच से गाँव के गाँव उजड़ते चले जा रहे हैं। जब हमारे लोग, हमारी जाति, हमारा समाज ही नहीं रहेगा तो हमारा धर्म किसके लिए होगा?"[5] वस्तुतः धर्मांतरण से परंपरागत आदिवासी संस्कृति नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार धार्मिक वर्चस्व की लड़ाई में अंततः नुकसान आम आदिवासी का ही होता है। धर्म के ठेकेदार केवल अपनी रोटी सेंकते हैं।

अस्मिता के लिए आदिवासियों के संघर्ष की समस्या को रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में यथार्थ और मार्मिक तरीके से प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार करनटों की निर्धनता, खानाबदोशी, जीवटता, जरायमपेशा जाति के रूप में जीवन जीने की विवशता, पुलिसिया अत्याचार और उनकी स्त्रियों के यौन शोषण की समस्या को पूरी संवेदना के साथ चित्रित करता है। उपन्यास का मुख्य पात्र सुखराम तरह–तरह के शोषण का शिकार होता है, उसकी विवशता यह है कि उसके पास शोषित होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। वह अपनी वेदना व्यक्त करता है–"हम जरायमपेशा हैं। हमारी कोई इज्जत नहीं है। कोई आसरा नहीं है, कोई हमारा मददगार नहीं। हमारे पास जमीन नहीं, कुछ नहीं। आसमान के नीचे सोते हैं, धरती हमारी माता है। हम घास की तरह पैदा होते हैं। रौंदे जाते हैं। हमारी औरतों को पुलिस के सिपाही दूब समझकर चर जाते हैं।"[6] सुखराम उपन्यास का ऐसा पात्र है जो लगातार अत्याचार सहता है। नट जाति को समाज में अत्यंत हेय दृष्टि से देखा जाता है और कई बार केवल इसी आधार पर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है। जातीय अत्याचार की पीड़ा से व्यथित होकर वह कजरी से कहता है– 'नहीं कजरी, नहीं कहने से तो काम नहीं चल जाता! तू थोड़ा गाँव की ओर देख। किसान होता है? गरीब है, भूखा है, पर उसे भी बौहरा उधार देता है, उसकी भी इज्जत है। हम सबसे गए–बीते, कुत्तों से भी बदतर हैं। हम नट क्यों हैं कजरी?'

'क्योंकि हमने नटनी के पेट से जनम लिया है।'

'हमने ऊँची जाति में जनम क्यों न लिया?'

'यह तो भाग की बात है।'

'मानुस देह पाई है हमने, तो फिर हम पर इतने जुलम क्यों होते हैं?"[7]

समाज के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा आदिवासी स्त्रियों के दैहिक शोषण को भी उपन्यासकार चित्रित करता है। जातीय अभिमान के चलते उच्च जाति के लोग आदिवासियों का बेखौफ शोषण करते हैं। विचार और व्यवहार दोनों से सामंती प्रवृत्ति के लोग समाज में मौजूद हैं जिनके लिए निम्न जाति की स्त्रियाँ केवल शारीरिक भूख मिटाने के लिए हैं। स्त्रियों के शोषण के मामले में छुआछूत और जातीय श्रेष्ठता के दंभ धरे के धरे रह जाते हैं। ठाकुरों के द्वारा करनट स्त्रियों के निर्मम शोषण पर सुखराम की भाभी कहती है–

'राधा की बहू कुएं में डूब मरी।'

'क्यों?'

'ठाकुरों ने उसे कहीं का न रखा।'

सुखराम ने दोनों हाथ उठाकर कहा : 'तू देख रहा है? यह है तेरी दुनिया! यह है तेरा न्याय! और कहने को हम कमीन हैं। ये लोग जाति के बल पर, डंडे के बल पर गरीबों की खाल खैंचते हैं। इनका घमंड सबको कुचलकर रखता है। यह नफरत के बल पर जीते हैं, ताकि दूसरों का घर बरबाद कर सकें।' वह कह नहीं सका। उसका गला रूंध गया। फिर रुककर कहा : 'और कह भाभी!' 'उन्होंने', स्त्री ने कहाः 'बुद्धा, हीरा और पंगा को नंगा करके बेतों से पीटा और उनकी औरतों के मिर्च भर दी।' सुखराम के रोंगटे खड़े हो गए। उसकी आँखें भय से निकल आईं। स्त्री ने कहाः 'पंगा की बहू के पेट में था। गिर गया। वह मर गई।"[8] सुखराम उच्च जातियों के इस निर्मम और घृणित अत्याचार से बहुत गहरी वेदना से गुजरता है। वह सोचता है, यह दुनिया ईश्वर ने आखिर क्यों बनायी है कि साधारण लोगों को जीवन जीने का भी अधिकार नहीं है। यहाँ गरीब हमेशा असहाय रहता है, जो ही पाता है वह उन सबका शोषण करता है। वह भगवान से पूछता है–"ये दुनिया नरक है। हम गन्दे कीड़े हैं। तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है जहाँ

Scanned with CamScanner

आदमी कटता है तो उसके लिए दर्द नहीं होता? ... वे बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए आदमी पर अत्याचार करने से नहीं कांपते? तू चुप है, तू जवाब नहीं देती? नट की छोरी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है। जिए जाती है। मर क्यों नहीं जाती? हम सब मर क्यों नहीं जाते?"[9] कहना न होगा कि आदिवासियों की यह पीड़ा उनकी नियति बन गई है। वे बेवश और लाचार हैं।

आदिवासियों के जीवन पर आये संकट को 'अल्मा कबूतरी' में लेखिका बहुत संजीदगी के साथ उठाती हैं। बुंदेलखण्ड की कबूतरा जनजाति भी नटों की भांति ही खानाबदोश है और तथाकथित सभ्य समाज के लोग (कज्जा) उन पर तरह–तरह के अत्याचार करते हैं। कबूतरा जनजाति के संबंध में गोपाल राय लिखते हैं–"भारत में आज भी कुछ ऐसी अभागी जनजातियाँ हैं जो आजादी का अर्थ नहीं जानतीं। उनके पास न अपनी जमीन है, न ठिकाने का घर बार। औपनिवेशिक शासन ने इन्हें 'जरायमपेशा' जाति घोषित कर न केवल तथाकथित 'सभ्य' समाज की नजरों में उपेक्षा और घृणा का पात्र वरन् पुलिस के अत्याचार का सबसे नरम चारा भी बना दिया था। यद्यपि देश के आजाद होने के बाद इन जातियों को समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है, पर जीविकोपार्जन का कोई सम्मानजनक साधन न उपलब्ध होने के कारण इनके पुरुष अपराधकर्म और स्त्रियां देह–व्यापार के लिए विवश होती हैं।"[10]

'अल्मा कबूतरी' में लेखिका अस्तित्व के लिए आदिवासियों के संघर्ष को गहरी संवेदना के साथ चित्रित करती हैं। देश के सरकारी महकमें में आदिवासियों को अभी भी भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। स्थिति यह है कि यदि कोई आदिवासी अपने परिश्रम से किसी पद को प्राप्त कर लेता है तब भी उससे दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। सरकारी कार्यालयों में अभी भी मध्ययुगीन संस्कार हावी हैं। उपन्यास का पात्र रामसिंह पढ़–लिखकर मास्टर हो गया है लेकिन उसे तब भी स्वतंत्रतापूर्वक जीने का अधिकार नहीं है। पुलिस के अत्याचार और बाबुओं की मनमानी से वह रोज अपमानित और प्रताड़ित होता है। आफिस का चपरासी तक उसे घृणा की नजरों से देखता है। रामसिंह और आफिस के बड़े बाबू के बीच कहा–सुनी पर चपरासी कहता है– "साले ऊँची जाति के लड़कों के हकों को हड़पकर चोर–उचक्कों से मास्टर–फास्टर बन गए। अब तक अम्मा लहँगा उठाए फिरती थी। बेटा कुर्सी पर क्या बैठा अम्मा सती–सावित्री हो गई। सिपाही अब तक होंठ चाटते हैं–बूढ़ी हो गई तो क्या औरत नहीं रही? और यह अपनी माँ का भड़ुआ, तुम्हें अपनी हैसियत समझा रहा है।"[11] उपन्यास में लेखिका दिखाती हैं कि किस तरह जाति के कारण उन पर अत्याचार होता है। देश की पूरी व्यवस्था भी शोषकों के पक्ष में ही खड़ी होती है और संघर्ष करने के बावजूद अंततः कबूतरा ही पराजित होते हैं। उपन्यास में रामसिंह माँ के अपमान के प्रतिशोध में चपरासी से झगड़ा कर लेता है। हालांकि उसकी कोई गलती नहीं है फिर भी व्यवस्था के चरित्र को देखकर उसे लगता है कि अंततः बलि का बकरा उसे ही बनना पड़ेगा। रामसिंह को अफसोस है कि उसकी माँ का सपना पूरा नहीं हो पाएगा। शोषकों के अत्याचार की पीड़ा और विवशता में रामसिंह को लगता है–"कैसा सपना देखा माँ ने, जो इस तरह कुचला गया। नौकरी निभाना बेखौफ जीना नहीं हो सकता। अपने लोगों को जगाने की बात सोची थी, वह भी बेकार है। सुख हमारी तकदीर में नहीं। नौकरी छूटने लायक अपराध कर आया। अब हथकड़ियों की बारी है। खुशी उनके लिए तो और भी नहीं, जो इंसान की तरह खुशी की छाया छूने को मरते हैं। माँ ने अपनी जिंदगी चुकाकर ऐसा ही सुख चाहा था, कितनी जल्दी दुख में बदल गया। इन लोगों को पता नहीं कि माँ अब इस दुनिया में नहीं। होती तो इन आतताइयों को पूरी बर्बरता के साथ जाँघों में भींचकर मार डालने का मौका ढूँढ़ती।"[12] पढ़–लिखकर समाज के लिए कुछ करने की चाह और सम्मान की जिंदगी जीने की अभिलाषा शोषकों के दमन से अधूरी ही रह जाती है। रामसिंह चाहकर भी जिंदगी की लड़ाई हार जाता है। वेदना के क्षणों में वह सोचता है–"माँ का कैसा कलेजा था! अन्याय सहन करके न्याय की राह बुहारती रही! मैं बेईमानों के बीच से ईमानदारी निकाल नहीं पा रहा! इनका बोया जहर का पेड़ बड़ा मजबूत है। उसकी जड़ें सैकड़ों वर्ष पुरानी हैं। पूरी तरह धरती में फैल गई हैं।"[13]

Scanned with CamScanner

निश्चित रूप से आदिवासी समाज के समक्ष 21वीं सदी में भी गंभीर चुनौतियाँ हैं। भारत सरकार के साथ–साथ राज्य सरकारों ने भी आदिवासियों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रयास किये हैं। संवैधानिक स्तर पर भी आदिवासी हितों की रक्षा की गई है लेकिन केवल योजना निर्माण और अधिकार देने से ही आदिवासियों की समस्या हल हो जायेगी ऐसा संभव नही है। हमें समाज की उस मानसिकता में भी परिवर्तन लाना होगा जिसके कारण आदिवासी आज भी हमसे कटे हुए हैं। आदिवासियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। विशेषतः महिला साक्षरता की क्योंकि इनकी स्थिति बहुत ही चिंताजनक है। प्राकृतिक संसाधनों पर आदिवासियों के हक को समझने की जरूरत है क्योंकि ये उनकी मिट्टी से जुड़ा मामला है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू कहा करते थे कि "आदिवासी कोई म्युजियम की वस्तु नही हैं। हमें उनको विकास की मुख्य धारा में शामिल करना है।" कहना न होगा कि अब हम आदिवासियों को उनके हाल पर नही छोड़ सकते, हमें हाथ आगे बढ़ाना ही होगा। हमें आदिवासी संस्कृति की रक्षा, भूख से मुक्ति और विस्थापन के बाद उनके पुनर्वास पर विशेष ध्यान देना होगा। साथ ही उनके लिए रोजगार के नये अवसर सृजित करने होंगे। भेदभाव रहित और समतामूलक समाज के लिए हमें आदिवासी विकास की रणनीति में व्यापक परिवर्तन करना होगा, तभी हमारा एक भारत, श्रेष्ठ भारत का स्वप्न साकार होगा।

संदर्भ–सूची :–

1. नवभारत टाइम्स (दिल्ली संस्करण), 25 मई 2009।
2. सिंह, शिवप्रसाद, शैलूश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 90, प्रथम संस्करण 1989।
3. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0, 201, प्रथम संस्करण 2000।
4. सिंह, राकेश कुमार, पठार पर कोहरा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ 155, द्वितीय संस्करण 2005।
5. पाठक, मनमोहन, गगन घटा घहरानी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 85, द्वितीय संस्करण 2000।
6. राघव, रांगेय, कब तक पुकारूँ, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ0 117, संस्करण 2002।
7. वही, पृ0 147।
8. वही, पृ0 267।
9. वही, पृ0 268।
10. राय, प्रो. गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 389, प्रथम संस्करण 2002।
11. पुष्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 102, प्रथम पेपरबैक संस्करण 2004।
12. वही, पृ0 102।
13. वही, पृ0 103।

Scanned with CamScanner